शास्त्रीय संगीत की ध्रुपद–धमार गायन शैली की विशेषताएँ

KOMALPREET KAUR
Research Scholar, Department of Music, Himachal Pradesh University, Summerhill, Shimla

सार संक्षेपिका

भारतीय शास्त्रीय संगीत की गायन शैली में अनेक गायन विधाएँ हैं। जिन में प्राचीन काल में परिवर्तन होता चला आ रहा है, जैसे सामगान, जाति गायन, प्रबंध गायन, ध्रुपद–धमार गायन, .ख्याल गायन इत्यादि। ध्रुपद गायन शैली प्राचीन गायन शैलियों में से एक है। जिसका शास्त्रीय संगीत के सभी घरानों में श्रेष्ठ स्थान रहा है। ध्रुपद गायन शैली की बंदिशों में गंभीरता, भक्तिवाद होने के कारण संगीतज्ञ इसका प्रयोग प्रभु की अराधना के लिए करते थे। ध्रुपद गायन में हिन्दी, ऊर्दू एवं ब्रज भाषा का प्रयोग किया जाता है। ध्रुपद गायन के प्रारम्भ में नोम–तोम् का आलाप किया जाता है और इसमें विभिन्न प्रकार की लयकारियों का प्रयोग किया जाता है। धमार की गायकी भी ध्रुपद के समान होती है, जिसमें होरी नामक गीतों और कृष्ण लीला से संबंधित गीतों को गाया जाता है। इसमें ध्रुपद की अपेक्षा गंभीरता कम होती है। इस शोध पत्र को प्राथमिक एवं माध्यमिक स्त्रोतों से लिखने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द
ध्रुपद, धमार, शास्त्रीय संगीत

भूमिका

ध्रुवपद का अर्थ है–अटलपद। जिस गीत की एक विशिष्ट चाल अथवा गाने की पद्धति ठहरी हुई होकर, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, उसे ध्रुवपद (ध्रुपद) कहते हैं। आज से 3000 वर्ष पहले संस्कृत भाषा में ध्रुपद गाये जाते थे और इन्हें ''ध्रुवा गीत'' कहते थे। यह कहना कठिन है कि ध्रुपद गायन कब से प्रारम्भ हुआ। तो भी यह गीत पांच सौ वर्षों से उत्तर की ओर लोकप्रिय रहा है, ऐसा कहने को इतिहास प्रमाण है। बेषक ही ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के पूर्व ही ध्रुपद गायन प्रारम्भ हो चुका हो, किन्तु इस का विशेष प्रचलन राजा मान के ही द्वारा हुआ और इस कार्य में राजा मान को डल्लू तथा धोंडू इन नायकों ने बहुत सहायता दी। भारत नाट्य शास्त्र में भरत मुनि ने लिखा है कि नारद तथा अन्य संगीताचार्यों ने नाना प्रकार के जिन गीतों की योजना की है, उनको 'ध्रुवा–गीत'' कहते हैं। भरत मुनि ने इन अति प्राचीन छंदों को ''जाति'' रागों में ताल बद्ध कर के नवीन रूप दिया। भरत ने नाटकों में गाने के लिये भी अनेक ''ध्रुवा–गीतों' की रचना की। इन नाना प्रकार ध्रुवा गीतों में चार अंग के ध्रुवा गीत भी हैं। जिसे, ''चतुष्पदा'' कहते हैं। हमारे हिन्दी 'ध्रुपद' भी इन प्राचीन संस्कृत 'चतुष्पदा' ध्रुवा गीतों के आधार पर ही रचे गये हैं। इन्हें 'ध्रुवा' इस लिये कहते हैं क्योंकि इन गीतों में वाक्य, वर्गालंकार, यति, ग्रह, अंश, न्यास इत्यादि का परस्पर सम्बन्ध अखंड होता है। ध्रुपद में पद को गाया जाता है जिसकी भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं–

भावभट्ट के अनुसार, ''ध्रुपद की भाषा संस्कृत या मध्यदेशीय हो सकती है।'' वेद की परिभाषा के अनुसार– ''ध्रुपद में उद्ग्राह, ध्रुवक, आभोग तीन धातु होते हैं, जो मध्यदेशीय भाषा में निबद्ध होते

हैं। मानकुतूहल के अनुवाद 'रागदर्पण में कहा गया है– ध्रुवपद की चार पंक्तियाँ होती हैं। इसकी भाषा देशी होती है।[1] संगीत विशारद में लिखा है ''ध्रुपद के गीत प्रायः हिन्दी, उर्दू एवं ब्रजभाषा में मिलते हैं। प्रसिद्ध गायक श्री राजाभैया पूछवाले के अनुसार– ''संस्कृत, हिन्दी, बृज, मालवी, उर्दू आदि भाषाओं में ध्रुपदों की रचना हुई है।''[2] धमार, धमाल, धमारी, इन शब्दों की मूल धातु ;त्ववजद्ध एक ही है। संस्कृत धातु 'धम' का अर्थ सुलगाना, भड़काना, जोर से फूंक मारना और बजाना है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'धम इति ऋच्छति' (धम+ऋ+अच) हो सकती है। जिसका अर्थ होगा गान का एक प्रकार जो प्रेरित करता हुआ–सा चले। धमार एक प्राचीन गायन विधा है, जो लोक संगीत में एक सामूहिक गान था। यह टोलियों में गाया जाता था। होली खेलती हुई टोलियां धमार गाती थीं और उनके संगीत के लिए प्रधान वाद्य ढोल था।[3] अकबरी दरबार के प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फज़ल ने आईने–अकबरी में धमार गायन करने वाले संगीतजीवी कीर्तिनिया ब्राह्मणों की चर्चा की है। उनका प्रमुख संगीत वाद्य रबाब बताया गया है। रबाब से पूर्व वीणा प्रमुख संगीत वाद्य के रूप में व्यवहृत होता रहा होगा। आजकल तानपूरे के साथ हारमोनियम का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। घन वाद्यों में पहले पखावज का ही प्रयोग होता था, अब शनैः शनैः तबला पखावज का स्थान लेता जा रहा है। पहले झांझ का भी प्रयोग होता था लेकिन अब इसका लोप हो गया है। धमार ताल में निबंध 'होरी' नामक गीत को धमार कहते हैं। धमार ताल 14 मात्रा की होती है। धमार के गीतों में प्रायः कृष्ण लीला का वर्णन होता है, जो फागुन की पृष्ठभूमि पर आधारित होता है। कृष्ण के साथ गोपिकाओं, सखा गण, वातावरण की नैसर्गिक मनोहरता, रंग भरी पिचकारियों, नृत्य, गान, .ढोल, डफ, मंजीरा, मृदंग, वंशी आदि का वर्णन होली पर्व का शाब्दिक चित्र प्रस्तुत कर देता है। इसी कारण जन साधारण में यह होली धमार की संज्ञा से भी प्रचलित है यद्यपि संगीतज्ञों ने इन दोनों में किंचित अन्तर स्थापित किया है। धमार के गीतों की शब्दावली से सिद्ध होता है कि धमार वृन्दावन क्षेत्र की देन है। यह विधा वहीं अधिक लोकप्रिया हुई और धीरे–धीरे भारत में फैल गई। ध्रुवपद की भांति ही धमार गीत के चार अथवा दो खण्ड होतें हैं। धमार की भाषा ध्रुवपद की भांति ब्रज भाषा अथवा ब्रज मिश्रित हिन्दी ही होती है। धमार का प्रभाव सिक्ख कीर्तन पर भी पड़ा। सिख गुरुओं की अलौकिक वाणी की कतिपय रचनायें धमार ताल में पाई जाती हैं। कीर्तनकार रबाबी तथा सिक्ख रागियों ने धमार में शब्द रीतें निबद्ध की।[4]

प्राचीन काल में ध्रुपद गाने वालों को 'कलावन्त' की उपाधि दी जाती थी। अकबर बादशाह के दरबार में प्रसिद्ध गायक ध्रुपदिये अर्थात् ध्रुपद गाने वाले ही थे। उन सब में से तानसेन एक अपूर्व गायक–रत्न हो गया। हरिदास स्वामी, नायक गोपाल, नायक बैजू, तानसेन, चिन्तामणि मिश्र आदि गायकों के बनाये हुए ध्रुपद आज भी सुनाई देते हैं। .ख्याल की अपेक्षा ध्रुपद अधिक विस्तृत होता

1 संगीत जनवरी–फरवरी 1965, पृ. 7
2 ध्रुपद–धमार गायन, प्रथम भाग, राजाभैया, पूछवाले, पृ. 1
3 लक्ष्मीनारायण गर्ग, निबन्ध संगीत, पृ. 631
4 डॉ. जोगिन्द्र सिंह बावरा, भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास, पृ. 89–90

है। उस के स्थायी, अन्तरा, संचारी तथा आभोग इस प्रकार चार भाग होते हैं। जिन्हे गायक ''तुक'' कहते हैं। कुछ ध्रुपदों के स्थायी और अन्तरा इस प्रकार दोही भाग होते हैं। संस्कृत, हिन्दी, बृज, मालवी, उर्दू आदि भाषाओं में ध्रुपदों की रचना हुई है। ध्रुपद को उत्तर हिन्दुस्तान का ज़ोरदार तथा मर्दाना गायन कहा जाता है। उसमें मुख्यतः श्रृंगार, वीर, भक्ति तथा शांत रस दिखाई देते हैं। ध्रुपदों में देवताओं का वर्णन व स्तुति, मंगल प्रसंग का वर्णन, राजाओं की स्तुति, गायन–शास्त्र आदि होता है। ध्रुपद–चौताल, सूलफाक, झंपा, तीव्रा, ब्रह्मा, रूद्र आदि तालों में पखावज के साथ गाये जाते हैं। अकबर बादशाह के समय ध्रुपद गायन की चार शैलियां मानी जाती थी, जिन्हें ''वाणी'' कहते हैं।[1]

ध्रुवपद की चार वाणियाँ

1.गोबरहार–वाणी :

इसका प्रधान लक्षण प्रसाद गुण है, यह शांत रसोद्दीपक है और इसकी गति धीर है। तानसेन गौड़ब्राह्मण होने के कारण, इसे गौडारी वाणी भी कहते हैं।

2. खंडहार–वाणी :

वैचिन्य और ऐश्वर्य–प्रकाश खंडहार–वाणी की विशेषताएं हैं। यह तीव्र रसोद्दीपक है। गोबरहार–वाणी की अपेक्षा इसमें वेग और तरंगे अधिक होती हैं, किन्तु इसकी गति अति विलंबित नहीं होती। प्रसिद्ध बीनकार राजा समोरखन सिंह ध्रुपद की खंडहार वाणी से संबंध रखते हैं।

3. डागुर वाणी :

इसका प्रधान गुण है सरलता और लालित्य। इसकी गति सहज व सरल है। इसमें स्वरों का टेढ़ा और विचित्र काम दिखाया जाता है। डागुर ग्राम के बृजचंन्द्र 'डागुरी' वाणी के साथ संबंध रखते हैं।

4. नोहार वाणी :

'नोहार' रीति से सिंह की गति का बोध होता है। एक स्वर से दो–तीन स्वरों का लंघन करके परवर्ती स्वर में पहुँचना इसका लक्षण है। नौहार–वाणी विशेष रूप से किसी रस की सृष्टि नहीं करती, कुछ–कुछ अद्‌भुत रसोद्दीपक है।[2] नोहार ग्राम के श्रीचंद 'नोहारी वाणी' से संबंध रखते हैं। आजकल जो ध्रुपद गायन पद्धति प्रचलित है वह चार वाणियों में से किसी वाणी की है या चारों वाणियों का मिश्रण है यह समझ में नहीं आता। वाणी के प्रकार यह अब केवल ऐतिहासिक विषय ही रह गया है।

1 ध्रुपद–धमार गायन, राजाभैया पूछवाले, पृ. 1–2
2 वसंत, संगीत विशारद, पृ. 233–234

ध्रुपद–धमार शैली की गायन विधि

ध्रुपद–धमार गायन शैली कभी भीएक जैसी नहीं रही क्योंकि संगीत एक क्रियात्मक कला है, अतः समय–समय पर विविध परिवर्तन होने स्वभाविक हैं।

ध्रुपद–धमार गायन के मुख्यतः दो भाग होते हैं–

1. अनिबद्ध

2. निबद्ध

अनिबद्ध गान के अन्तर्गत बंदिश गाने से पूर्व ताल के बंधन से मुक्त आलाप किया जाता है जिसे आज नोम–तोम के आलाप की संज्ञा दी जाती है तथा निबद्ध गान के अन्तर्गत ध्रुपद–धमार में गाया जाने वाला पद आता है, जो कि सुर, ताल, राग में बंधा होता है।'

ध्रुपद–धमार गायन शैली की सौंदर्यात्मक विशेषताएँ

मन पर पड़ने वाले गहरे प्रभाव या अनुभूति की दृष्टि से ध्रुपद की गानशैली की कुछ निजी विशेषताएं हैं। विलंबित लय से षुरूकरके क्रमशः द्रुत की ओर बढ़ते हुए नोम्–तोम् आलाप की क्रिया अत्यनत आकर्षिक और चित्त को क्रमशः द्रुति से दीप्ति की ओर ले जाती है। लयबद्ध और गमकयुक्त द्रुत आलाप के तुरन्त बाद मध्य विलंबित लय में पद के गान से जो आनंद प्राप्त होता है, चित्त पर प्रभाव की दृष्टि से, ध्रुपद शैली का प्राण है। द्रुत लय और गमक आदि के कारण चित्त तनाव या खिंचाव की स्थिति में आ जाता है जो पद के शुरू होते ही समाप्त हो जाता है और श्रोता का मन पूरी तरह विश्रान्त हो जाता है, उस से एक चैन की अनुभूति और चित्त को आनंदानुभूति होती है। नोम–तोम् आलाप की द्रुति और दीप्ति पूरी तरह समाप्त नहीं होती बल्कि कुछ शमन होकर चित्त 'प्रसाद' की स्थिति में आ जाता है और गीत के चारों खंड गाने तक स्थिर हो जाता है। इसके बाद होने वाले लय–वैविध्य से चित्त पर बड़ा अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है और एक प्रकार की लोकोत्तरता के कारण चित चमत्कृत हो जाता है। लय का काम संगीत के मर्मज्ञ और सामान्य सभी श्रोताओं को प्रिय लगता है क्योंकि लय और बोल से गुँथाहुआ बोलबाँट का काम स्वर पद और ताल के वैविध्य के कारण सभी के लिए रंजक होता है।[1]

ध्रुपद गायन के समकालीन 'धमार' गायन है। धमार गायन में ध्रुपद की अपेक्षा गम्भीरता कम होती है और शब्द रचना भी बहुत सरल होती है। धमार की गायकी ध्रुपद गायकी के समान ही गायी जाती है। इसमें लय के अलग–अलग प्रकार से बोलतान (उपज) ली जाती है। धमार यह ध्रुपद से अधिक आकर्षित मालूम देने के कारण विशेष लोकप्रिय है। ''धमार'' की धूमधाम केवल लोक–जीवन अथवा वैष्णवों के मंदिर में ही नहीं थी अपितु मुगलों के उनमें भी औंरगजेब तक के दरबार रंगीन धमारों से गूँजते थे। ध्रुपद के साथ–साथ धमार गायन शैली भी प्रचलित थी।

1 सुभद्रा चौधरी, संगीत–संचयन, पृ. 173–174

ध्रुपदगायक धमार गायन में भी प्रवीण होते थे। धमार–शैली कुछ ध्रुपदगायन के ही अनुरूप होती है। इसे कई लोग ''होरी'' भी कहते हैं। क्योंकि धमार के गीत प्रायः श्रृंगारिक होते हैं, जिनमें प्रायः राधा–कृष्ण के परस्पर होली खेलने का आकर्षिक वर्णन होता है या यूँ कहिये कृष्ण व गोपियों की फागुन–मास की लीलाओं का वर्णन होता है। इसकी शब्द–रचना उच्च कोटि की नहीं होती। अर्थ–वैचित्रय भी साधारण ही होता है। इसके गायन में ''धमार'' नामक ताल का प्रयोग होता है। शायद इसी कारण इन होरी–गीतों का 'धमार' नाम पड़ा हो। इस ताल पर अधिकार प्राप्त करने के लिए पर्याप्त अभ्यास की आवश्यकता है। इस गायन–शैली में भी आलाप का प्राधान्य है, ध्रुपद के समान इसमें भी संगीत का गंभीर स्वरूप बना रहता है। ''धमार'' से ''ख्याल'' में समान तान नहीं ली जाती। इनमें ठाह, दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि प्रकार होते हैं। उमा मिश्र के शब्दों में 'गायक जब इसमें ध्रुपद शैली अनुसार आड़, कुआड़ इत्यादि का क्रम दिखाने लगते हैं तब एक ओर से तो इसकी सरस शब्द रचना और आकर्षिक आलापों से हृदय को संतोष प्राप्त होता है तथा दूसरी ओर लय के चमत्कार से बुद्धि भी चमत्कृत होती है।[1]

इस प्रकार स्वर, पद और ताल–इन तीनों का उत्कृष्ट रूप ध्रुपद–धमार शैली में है। मृदंग अर्थात् पखावज जैसे गंभीर, मधुर, श्रृंगारिक और वातावरण को पूरित करने वाली ध्वनि से युक्त वाद्य का प्रयोग इन शैलियों की भव्यता में वृद्धि करता है। ध्रुपद–धमार की साधना कठिन और श्रमसाध्य होने और इसका गान सभी श्रोताओं के लिए हृदयरंजक होने के कारण इन्हें शास्त्रीय संगीत में श्रेष्ठ स्थान दिया गया।

संदर्भ

सत्यवती डॉ. शर्मा (1994) ख़्याल गायन शैली : विकसित आयाम, पंचशील प्रकाषन, जयपुर
चौधरी सुभद्रा (1989) संगीत–संचयन, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर,
बावरा डॉ. जोगिन्द्र सिंह(1994) भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास, ए.बी.एस. पब्लिकेश्नस
वसंत (2004), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरसए
पूछवाले राजाभैया (2011) ध्रुपद–धमार गायन, (प्रथम भाग), संगीत कार्यालय, हाथरस
गर्ग लक्ष्मीनारायण (2012), निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस

पत्रिका

संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरसए,जनवरी–फरवरी, 1965

1 डॉ. सत्यवती शर्मा, ख़्याल गायन शैली : विकसित–आयाम, पृ.–70